मध्य हिमालय के संस्कृत अभिलेखों में मानवपरिवेश

डॉ० इन्दिरा जुगरान
एसो०प्रोफेसर-संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऋषिकेश

पर्वतश्रेष्ठ हिमालय के पाँच उत्तम तीर्थ हैं - मानस, केदार, नेपाल, जालन्धर और कश्मीर[१]। मानस एवं केदार को संयुक्त रुप सें उत्तराखण्ड गया है।[२] उत्तराखण्ड का पूर्व पद - 'उत्तर' मनु द्वारा निर्दिष्ट 'उत्तरदेश' तथा पाणिनी द्वारा उल्लिखित उत्तर पथ से लिया गया है।[३] उत्तरकाल में मानसखण्ड को 'कूर्मांचल' (कुमाऊँ) और केदार को 'गढ़देश' या 'गढ़वाल' कहा जाने लगा।[४] वैदिक मानचित्रों में 'उशीनर्'[५] नाम से अंकित उत्तराखण्ड के लिए महाभारत काल में 'कलिन्द' जनपद का प्रयोग हुआ है।[६] अब यह भू-भाग मध्य हिमालय में स्थित उत्तरांचल राज्य का अभिन्न अंग है। इसमें कुल १३ जिले शामिल है।

हिमालय का नेपाल खण्ड मध्यहिमालय में उत्तरी अक्षांस २६, २०-३०,२६ तथा देशान्तर ८०, ४-८८,१२ के मध्य अवस्थित है। यह एक पृथक राष्ट्र है। पश्चिम में भारत से विभाजन करती हुई कालीगंगा, पूरब में भारत का दार्जिलिंग राज्य, दक्षिण में सिक्किम तथा कंचनजंगा पर्वत से निकलने वाले जल प्रपात (छोटी-छोटी नदियां) इसकी सीमाओं का निर्धारण करती हैं। उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई २३० कि०मी० तथा लम्बाई पूरब में मेची नदी से लेकर पश्चिम में कालीगंगा तक ८८० कि०मी० है। नेपाल ७७ जिलों में विभक्त है, जिसमें २० तराई क्षेत्र में हैं।

मध्य हिमालय में सम्पूर्ण गढ़वाल एवं कुमायूँ तथा नेपाल का अधिकांश भू-भाग सम्मिलित है।[७] इनमें जितनी भौगोलिक एकता है उतनी ही सांस्कृतिक एकता भी। बहुत प्राचीनकाल से ही गंगा की पावनता और महत्व से प्रभावित होकर तथा हिमालय के रहस्यमय सौन्दर्य से आकृष्ट होकर मध्यहिमालय के पावन प्रदेशों की यात्रा करने और चतुर्थ आश्रम बिताने की परम्परा के फलस्वरुप ऋषि-मुनियों से लेकर चक्रवर्ती राजाओं तक और परिव्राजकों से लेकर गृहस्थों तक का आगमन यहाँ निरन्तर होता रहा। इस प्रक्रिया ने इस क्षेत्र को जनाकीर्ण और पलिका, ग्राम, हाट तथा पुर युक्त बनाया और मैदानी भाग से निरन्तर सांस्कृतिक सम्पर्क में बनाये रखा। प्राचीन काल से ही यहाँ जो राजा था राज्य रहे भावि विजय वाहिनियों के साथ जो नरेश आते रहे, उनकी आज्ञायें एवं ऐतिहासिक हस्ताक्षर हमें अनेक शिलालेखों, नृपतापशासन-पत्रों और ताम्रपत्रों के रुप में मिलते हैं। इन अभिलेखों का विस्तार और संयोजन अलग-अलग तरह से है। कुछ मानव परिववेश के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं तो कुछ साहित्यिक सौष्ठव एवं ऐतिहासिक दस्तावेज के रुप में प्रसिद्ध हैं।[८] कुछ

अभिलेख नाम मात्र का परिचय देते हैं। जैसे देवप्रयाग का यात्री नामक अभिलेख (प्रथम शती)। इस लेख में मानव पर्यावरण के स्वर्ग 'मानपर्वत', संभवतः मानसरोवर का उल्लेख है। कुछ अभिलेख धर्मिक स्वरुप के हैं और मंदिर, मूर्ति, जलाशय, वन, पर्वत तथा पशु-प्राणियों के संरक्षण से सम्बन्धित हैं। यथा अशोक के साम्राज्य की उत्तरी सीमा पर यमूना तथा टौंस नदियों के संगम पर अवस्थित कालसी (काल्सी) का 'कालशिला' नामक अभिलेख। यह लेख विशाल शिला पर उत्कीर्ण ४० पंक्तियों का ईसा से लगभग २५७ वर्ष पूर्व का है। यह पूर्णतः धम्मालिपि है। इस लिपि के द्वितीय शिलाभित्तिरेख मे मानव परिवेश का आदर्श प्रस्तुत है। जिसका आशय इस प्रकार है कि-अशोक के राज्य में हर स्थान पर मनुष्यों एवं पुशओं की चिकित्सा की व्यवस्था कर दी गई है, जहाँ औषधीय जड़ी-बूटी नहीं हैं, वे लाई गई हैं या बो दी गई हैं। सड़कों पर कुएँ खुदवा दिये गये हैं और दोनों ओर मुनष्यों एवं पशुओं के आसन के लिए पेड़ लगवा दिये हैं।

शासकीय अभिलेख चाहे वे दानपत्र हों, प्रशस्तिलेख हों अथवा स्मारकलेख हों अपेक्षाकृत बड़े और उनमें वंश परम्परा तथा समय-समय पर हुए महान कार्यों का उल्लेख है।[३] यद्यपि यह विवरण अनेक अभिलेखों में अतिरंजित भी है। सामान्य अभिलेख सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक होते हुए भी मानव परिवेश का अच्छा ज्ञान प्रदान करते हैं।[१०] उत्कीर्णकों ने ब्राहमी, कुटिलता तथा गुप्तलिपि में प्रायः काफी शुद्धता से अंकन किया है।[११] फिर भी जो कतिपय अशुद्धियां मिल जाती हैं, उनकी अज्ञता की अपेक्षा विवशता और छेनी का सहज असंतुलन मानना अधिक उपयुक्त होगा। प्रायः पंक्तियों को विशेष विराम-चिहों से पृथक करने का भी प्रयोग मिलता है और अभिलेखों पर उसके स्वचिंता, लेखक, उत्कीर्णन तथा लिखवाने वाले अधिकारी के नाम या पद नाम भी मिल जाते हैं। कुछ अभिलेखों में विक्रम या शक संवत में से किसी एक का या दोनों का उल्लेख भी है। कुछ अभिलेखों में तो तिथि, मास, वार, पक्ष, घड़ी तथा विशेष ग्रहों की स्थिति और लिखने का स्थान भी मिलता है।[१२] अभिलेख प्रायः परम्परागत शैली और शब्दावली में ही मिलते हैं। सामान्य रुप में अभिलेखों के प्रारम्भ में स्वस्ति, ओउम, सिद्धम, स्वामी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। डी०सी० सरकार ने अभिलेखीय परिवेश में त्रिरत्न, भीवत्स एवं वेष्टनी पर वृत्र तथा अन्य कुछ स्मारक चिहों के बारे में भी परिचय दिया है।[१३]

मध्य हिमालय में ईसा पूर्व २५७ से १३वीं शती पर्यन्त सहस्त्रों संस्कृत अभिलेखों का उत्कीर्णन हुआ। इन अभिलेखों से अनेक राजवंशों का और उनमें होने वाले नरेशों का परिचय तो मिलता ही है। साथ ही उनके कार्यकाल, प्रशासन तथा आर्थिक दशा का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। भाषा तथा लिपि के अतिरिक्त इन अभिलेखों का अध्ययन मानव परिवेश के प्राकृतिक, भौगोलिक

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा नृवंशीय बिन्दुओं आधारों पर किया जाना अधिक रोचक तथा उपादेय है।[१४] इस अध्ययन के अन्तर्गत इस बाद का अवलोकन आवश्यक है कि तत्कालीन प्रशासनिक इकाइयाँ क्या थीं? और उनकी भौगोलिक सीमायें कहाँ तक विस्तृत थी? यह ध्यान देने की बाद है कि प्राकृतक सीमायें अर्थात् उच्चपर्वत श्रेणी, गहरी घाटी, वेगवती नदी तथा सघन वन उपत्यकायें प्रायः राज्य की सीमाओं और प्रशासनिक सीमाओं का आधार बनती हैं।[१५] क्षेत्र विशेष के नामकरण पर भी भौगोलिक प्रभाव लक्षित होता है। उदाहरण के लिए मध्य हिमालय के 'अन्तराग विषय' तथा 'पर्वताकर राज्य' के नाम लिये जा सकते हैं। अशोक के समय में यहाँ के निवासियों के लिए 'पुलिन्द' तथा क्षेत्र के लिए 'अपरान्त' का उल्लेख कालसी के अभिलेख में आया है।[१६] कौटिल्य ने मण्डल का उल्लेख मौर्य साम्राज्य के सीमान्त पर करद क्षेत्रों के रुप में किया है।[१७] पैनखंड़ा मण्डल, लाखामण्डल, बालामण्डल, डाडामण्डल, केदारमण्डल जैसे पद वर्तमान समय में भी प्रचलित शब्दावली पर तत्कालीन प्रभाव को प्रतिपादित समय में भी प्रचलित शब्दावली पर तत्कालीन प्रभाव को प्रतिपादित करते हैं। सामन्त पुरुषोत्तम के शासन में कगामण्डल का भी उल्लेख है।[१८]

मध्य हिमालय के अभिलेख भारतीय सांस्कृतिक एवं मानवीय परिवेश के अमर स्मारक हैं। ईसा पूर्व २५७ से लेकर १३वीं शदी पर्यन्त तक की दीर्घकालीन विवेच्य सामग्री इन्हीं अभिलेखों में सुरक्षित है। मध्य हिमालय के विस्तृत अंचल में बिखरे अभिलेखों की संख्या सहस्त्रों में है (किन्तु प्रस्तुत लेख के विषय विस्तार को देखते हुए हम यहाँ पर मानव परिवेश से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण अभिलेखों की विषय सामग्री को अति संक्षेप में कालक्रमानुसार निम्नवत् तालिका के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं।)

उक्त विषय वस्तु एवं तथ्यों के उद्‌बोधन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यहिमालय के संस्कृत अभिलेख जहाँ एक ओर ये अभिलेख मानव परिवेश के बृहत्कोण एवं अक्षय भण्डार है। दुर्भाग्य से आरम्भ में इस ओर समुचित ध्यान न दिये जाने के कारण बहुत सी सामग्री बिनष्ट हो गई। अतः प्राकृतिक एवं विनाशकारी घटकों से इस संपदा का संरक्षण किया जाना नितान्त आवश्यक है।

१. केदारखण्ड पुराण - २०४/५६-५७, वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई से मुद्रित १६०५.
२. जुगरान, एम०एल०, केदारखण्ड पुराण एवं केदारखण तीर्थयात्रा, डी०लिट्० शोध प्रबन्ध, पृ०१, १६८८.
३. डबराल, एस०पी०, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग १, पृ० ३४, वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढ़वाल। उ०प्र० पृ० ३४, प्रथम संस्करण।
४. सिंह, पुरुषोत्तम-बौद्धगया शिलालेख, इण्डियन एंटिक्वायरी, जिल्द १०, पृ० ३४५.
५. मजूमदार तथा पुसलकर-वैदिक पेज, पृ० ६४, डबराल, उत्तराखण्ड का इतिहास भाग १ से उद्धरित।
६. महाभारत वनपर्व १३०/२६.
७. स्पेट, इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० ४१३.
८. गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख, पृ० २ गढ़वाल वि०वि० प्रकाशन सं०-६, प्रथम, संस्करण १६८१.
९. जुगरान, डॉ० इन्दिरा, मध्यहिमालय के संस्कृत अभिलेखों का विवेचनात्मक अध्ययन, डी०फिल० शोध, पृ० २०, १६६२.
१०. पंवार, शूरवीर सिंह-गढ़वाली के प्रमुख अभिलेख एवं दस्तावेज, प्रस्तावना भाग।

११. जुगरान डॉ० इन्दिरा–भारतीय संस्कृति के परिवेश में संस्कृत अभिलेखों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन, डी० लिटअ्० शोध प्रबन्ध, पृ० १८, १९९७.
१२. गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख, वही० पृ० ३.
१३. संदर्भ ११, पृ० २०.
१४. संदर्भ १२ पृ० ७.
१५. संदर्भ ६, पृ० २०.
१६. अशोक, कालसी अभिलेख, जनपद देहरादून उत्तरांचल,
१७. संदर्भ ८ पृ० ८
१८. इंडिया एंटीक्वेरी जिल्दी १०, पु० ४१.